अथापामार्गः [चिरचिरा]। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

अपामार्गस्तु शिखरी ह्यधःशल्यो मयूरकः।
मर्कटी दुर्ग्रहा चापि किणिही खरमञ्जरी ॥ २१९ ॥
अपामार्गः सरस्तीक्ष्णो दीपनस्तिक्तकः कटुः। पाचनो रोचनश्छर्दिकफमेदोऽनिलापहः।
निहन्ति कृमिजान्मार्शःकण्डूशूलोदरापचीः ॥ २२० ॥

'चिरचिरा' के नाम तथा गुण—अपामार्ग, शिखरी, अधःशल्य, मयूरक, मर्कटी, दुर्ग्रहा, किणिही, खरमञ्जरी इतने नाम 'चिरचिरा' के हैं। **चिरचिरा**-तिक्त तथा कटु रसयुक्त, सारक, तीक्ष्ण, अग्निदीपक, पाचक, रोचक (भोजन में रुचि उत्पन्न करनेवाला) एवं वमन, कफ, मेद, वायु, कृमिरोग, आध्मान (अफरा), अर्श, कण्डू, शूल, उदररोग और अरुचि को दूर करता है॥

११४ चिरचिरा।

हि०-लटजीरा, चिचिरी, चिरचिरा, चिचड़ा। **म०**-आघाडा। **बं०**-आपांग। **गु०**-अधेड़ो। **क०**-उत्तरणी। **ते०**-अपामार्गमु। **मा०**-आंधी झाड़ो, ओंगा। **ता०**-नायु रुवि। **मला०**-वलियकटलाट। **फा०**-खारबाझ गूनह। **अ०**-अत्कुमह। **अं०**-The Prickly-Chaff Flower (दी प्रिक्ली-चॅफ फ्लावर)। **ले०**-*Achyranthes aspera, Linn.* (एचिरेन्थिस् एस्पेरा लिन.)। **Fam.** Amaranthaceae (एमेरेन्थेसी)।

यह शहर या गाँव के बाहर बागों या जंगलों में बिना बोए ही उत्पन्न होता है। यह प्रायः भारतवर्ष के सब प्रान्तों में ३००० फीट तक पाया जाता है। इसका **क्षुप**—स्वावलंबी, १–३ फीट ऊँचा तथा शाखायें कुछ आरोहणशील एवं पर्वों के ऊपर मोटी होती हैं। **पत्ते**—चौलाई के पत्तों की तरह कुछ गोल, अंडाकार, नोकीले एवं १–५ इञ्च लंबे होते हैं। इसके पत्तों और कांड पर बहुत सूक्ष्म सफेद-सफेद रोम होते हैं। पुष्पदंड लगभग डेढ़ फुट तक लम्बा होता है उस पर कुछ लाल गुलाबी पीलापन लिये हुए फूल निकलते हैं। उसी दंड पर काँटेदार छोटे-छोटे फल उल्टे लगते हैं। ये काँटेदार फल कपड़े पर चिपट जाते हैं इसलिए कहीं-कहीं इसे 'कुत्ता' नाम से भी पुकारते हैं। जब फल पक जाते हैं तो इनके अन्दर से चावल निकलते हैं। इसके मूल, बीज, पत्र एवं पंचांगक्षार का चिकित्सा में प्रयोग करते हैं।

रासायनिक संगठन—इसके पत्र में २४, शाखाओं में ८ तथा मूल में ८½% राख रहती है। इसमें यवक्षार बहुत पाया जाता है जो पत्तों में २१½, शाखाओं में ३८ तथा मूल में २८½% रहता है। इसके अतिरिक्त चूना, सोराखार, नमक, लौह तथा गन्धक आदि अन्य द्रव्य इसमें पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—अपामार्ग, उष्ण, तिक्त, कटु, तीक्ष्ण, दीपन, पाचन, पित्तविरेचक, वामक, मूत्रजनन, कफघ्न, विषघ्न, कृमिघ्न, अम्लतानाशक एवं शिरोविरेचन (बीज) है।

इसका प्रयोग कफ, मेद, वात, अर्श, आनाह, शूल, जलोदर, शोफ, अपची, व्रण, त्वचा के विकार, कुष्ठ एवं सर्पादि के विष में करते हैं।

(१) कुपचन, आमाशय की शिथिलता, पीड़ा एवं हृल्लास में अपामार्ग, अन्य कटुवे पदार्थों के साथ भोजन के पूर्व देते हैं जिससे पाचक रस की वृद्धि होती है तथा शूल कम होता है। भोजनोपरांत देने से अम्लता कम होती है तथा श्लेष्मा का विलयन होता है। इसमें भोजन के २–३ घण्टे बाद गरम-गरम क्वाथ देते हैं। इसका यकृत पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है। इससे पित्तवाहिनी नलिका का शोथ कम होकर पित्तस्राव उचित होता है। पित्ताश्मरी तथा अर्श में इससे अच्छा लाभ होता है। अर्श में इसकी जड़ को तण्डुलोदक के साथ पीसकर मधु मिलाकर देते हैं। रक्तार्श में बीज का लेप भी उपयोगी होता है।

(२) मूत्रेन्द्रिय विकारों में इसके साथ मुलेठी, गोखरू तथा पाठा का उपयोग करते हैं। वृक्कजन्य जलोदर में इससे लाभ होता है। इससे मूत्र की अम्लता कम होने से तथा इसका दाहशामक प्रभाव होने के कारण परमा, बस्तिशोथ, वृक्कशोथ तथा अश्मरी में इसको देते हैं। अश्मरी में इसका क्षार भेड़ के मूत्र के साथ दिया जाता है।

(३) जीर्ण कफ विकारों में इसका क्षार बहुत ही लाभदायक होता है। इससे गाढ़ा कफ पतला होकर निकलने लगता है। इसमें चतुःषष्टि पिप्पली, अतीस, कुपीलु, घृत एवं मधु के साथ अपामार्गक्षार दिया जाता है।

(४) सर्पविष, वृश्चिकदंश, मूषिक विष तथा पागल कुत्ते के काटने पर इसका उपयोग करते हैं। इनमें मूल, पंचांग या बीज का लेप तथा मूल पीसकर पिलाते हैं।

(५) आँख की फूली में इसकी जड़ को मधु के साथ पीसकर अंजन कराते हैं। दन्तशूल में पत्रस्वरस मसूड़ों पर मलते हैं तथा दाँतों के गढ़ों में क्षार भरते हैं। इससे दतुअन करने से लाभ होता है। बाधिर्य, कर्णशूल तथा कर्ण नाद में इससे सिद्ध तैल कान में डालते हैं। सन्धिशोथ में पत्ते

को पीसकर गरमकर बाँधते हैं। इसके पंचांग के काथ से स्नान कराने से कण्डू दूर होती है। सद्यः क्षत में खून रोकने के लिये इसका पत्रस्वरस लगाते हैं।

मात्रा—मूल तथा बीज ½–१ तोला; क्षार ४–८ रत्ती; मूल काथ १½–५ तोला।

अथ रक्तापामार्गः [लाल चिरचिरा]। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

रक्तोऽन्यो वशिरो वृत्तफलो धामार्गवोऽपि च।
प्रत्यक्पर्णी केशपर्णी कथिता कपिपिप्पली ॥ २२१ ॥
अपामार्गोऽरुणो वातविष्टम्भी कफहृद्भिमः। रूक्षः पूर्वगुणैर्न्यूनः कथितो गुणवेदिभिः ॥

'लाल चिरचिरा' के नाम तथा गुण—दूसरा जो 'लाल चिरचिरा' है उसके नाम—वशिर, वृत्तफल, धामार्गव, प्रत्यक्पर्णी, केशपर्णी, कपिपिप्पली ये सब हैं। लाल चिरचिरा-वायु को स्तब्ध करने वाला, कफनाशक, शीतवीर्य तथा रूक्ष होता है। इसे द्रव्यगुण के जानने वालों ने उपर्युक्त चिरचिरा के गुणों से न्यून गुणवाला बताया है ॥ २२१–२२२ ॥

११५ लाल चिरचिरा

हि०—लाल ओंगा; लाल चिरचिरा। बं०—रक्तापांग। म०—तांबडा आघाड़ा, लाल आगाड़ा। गु०—रातो अधेड़ो।

लाल चिरचिरे का क्षुप उक्त (सफेद) चिरचिरे के समान ही होता है। पत्ते इत्यादि भी एक ही समान होते हैं। परन्तु पत्ते पर लाल धब्बे होते हैं और काण्ड पर भी कुछ ललाई होती है। इसके पत्ते सफेद की अपेक्षा कुछ मोटे और बड़े होते हैं और बीज कुछ पतले होते हैं। आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि से इसकी एक अन्य जाति (Species), ए. बाइडेन्टेटा ब्लूम (A. bidentata Blume) का उल्लेख मिलता है किन्तु वह रक्त भेद ही है ऐसा नहीं कहा जा सकता। कुछ विद्वानों ने एक भेद (Variety), ए. रुब्रो. फुस्का (A. rubro-fusca) का उल्लेख किया है।

अथापामार्गफलगुणानाह

अपामार्गफलं स्वादु रसे पाके च दुर्जरम्। विष्टम्भि वातलं रूक्षं रक्तपित्तप्रसादनम् ॥

'चिरचिरा' के फल का गुण—यह रस तथा विपाक में मधुर रस युक्त, दुर्जर (जल्दी हजम नहीं होने वाला), विष्टब्धताकारक, वातजनक, रूक्ष तथा रक्तपित्त को दूर करने वाला होता है ॥ २२३

गुण-दोष–

धन्वन्तरि तथा राजनिघण्टु के अनुसार– अपामार्ग तीक्ष्ण, उष्ण, कटुरस प्रधान तथा कफनाशक है और अर्श, कण्डू, उदररोग नाशक, रक्त विकार को दूर करने वाला, ग्राही तथा वमनकारक है। रक्तापामार्ग शीतल, कटुरस प्रधान, कफ तथा वात नाशक है और व्रण, कण्डू तथा विषनाश करने वाला है, ग्राही है एवं वमनकारक है।

भावप्रकाश के अनुसार– अपामार्ग दस्तावर, तीक्ष्ण, जाठराग्निदीपक, तिक्त तथा कटुरस प्रधान, पाचक एवं रोचक है और वमन, कफविकार मेदोविकार तथा वातविकार का नाश करता है। इनके अतिरिक्त हृदय रोग, आध्मान, अर्शरोग, कण्डू, शूल, उदररोग तथा अपचीरोग को नष्ट करता है। रक्तापामार्ग वात विबन्धक, कफकारक तथा शीतल है और रूक्ष है तथा श्वेतापामार्ग के गुण से कुछ कम गुणवाला है ऐसा अपामार्ग के गुण को जानने वाले कहते है॥ अपामार्ग का फल रस तथा पाक में मधुर है और दुष्पच है, विष्टम्भ कारक, वातकारक, रूक्ष तथा रक्तपित्त को शुद्ध करने वाला है। **राजवल्लभ के अनुसार**– अपामार्ग अग्नि के समान तीक्ष्ण है तथा क्लेदोत्पाक एवं उत्तम स्रंसन कारक है।

वैद्यक शास्त्र में अपार्मार्ग का व्यवहार-

शिरोविरेचन के लिए अपामार्ग के तण्डुल का प्रयोग- शिरोविरेचन द्रव्यों में अपामार्ग उत्तम है (च. सू.आ.२५)।

(१) **अर्शरोग (बवासीर) में अपामार्ग के मूल का प्रयोग-** अपामार्ग के मूल का चूर्ण (या क्षार) को शहद के साथ चाटकर चावल के धोअन ऊपर से पीवे (सु.चि.अ.६)। (२) **क्रिमिरोग में अपामार्ग का प्रयोग-** क्रिमिरोग में शिरीष तथा अपामार्ग का रस मधु मिलाकर पान करे (सु.उ.अ.५४)।

(१) **सद्यव्रण में रक्त स्राव होने पर अपामार्ग के पत्र के रस का प्रयोग-** अपामार्ग के पत्ते के रस से सींचने पर सद्यव्रण से प्रवृत रक्त स्राव रुक जाता है (चक्र.व्रणशोथचि.)। (२) **कर्ण नाद तथा कर्ण स्राव में अपामार्ग के क्षार का प्रयोग-** अपामार्ग क्षार के जल में अपामार्ग के कल्क के साथ सिद्ध किया हुआ तिल का तैल कान में पूरण करने से कर्ण नाद तथा कर्ण वाधीर्य को दूर करता है (चक्र. कर्णरो.चि.)। (३) **नये नेत्र प्रकोप में अपामार्ग मूल का प्रयोग-** अपामार्ग के मूल दो ताम्र के पात्र में थोड़ा सेन्धा नमक मिलाकर मट्ठा में घिसकर नेत्र में लगाने से नेत्र प्रकोप (नेत्र की लालिमा, दर्द आदि) नष्ट हो जाता है (चक्र. ने.चि.)।

विसूचिका में अपामार्ग के मूल का प्रयोग- अपामार्ग के मूल का चूर्ण जल के साथ (या अपामार्ग का स्वरस) पान करने से विसूचिका (हैजा) रोग नष्ट होता है (भा.म.ख.)।

रक्तार्श में अपामार्ग के बीज का प्रयोग- अपामार्ग के बीज का कल्क चावल के धोअन के साथ पान करने से रक्तार्श नष्ट होता है, इसमें सन्देह नहीं है (शार्ङ्गधर सं.- द्वि.ख.अ.५)।

(१) **उन्माद में अपांमार्ग के मूल का प्रयोग-** सफेद कुसुम वाली बला (वरियार) के साढ़े तीन कर्ष (३५ ग्राम) को यो व्यक्ति अपामार्ग के मूल के बीज को क्षीरपाक के अनुसार पाक कर खाता है और अपामार्ग के पञ्चांग के शीतल कषाय को पान करता है वह शीघ्र ही भयंकर उन्माद रोग को जीत लेता है (बंगसेन-उन्माद चि.)। (२) **आगन्तुक व्रणरोपण के लिए अपामार्ग के मूल का प्रयोग-** बरियार तथा अपामार्ग की जड़ को पीस कर उस कल्क के साथ तैल पाक के अनुसार तैल पाक करे॥ इसे नूल तैल कहते हैं और यह आगन्तुक व्रण को नष्ट करता है (बंगसेन आगन्तुक व्रणाधिकार)।

(१) **निद्रानाश में अपामार्ग का प्रयोग-** काकजङ्घा तथा अपामार्ग के मूल के क्वाथ को पान करने से शीघ्र ही निद्रा आती है (हा.चि.अ.१६)। (२) **शोथ में अपामार्ग का प्रयोग-** शोथ में अपामार्ग तथा करञ्ज के जड़ के क्वाथ से संस्वेदन करें (हा.चि.अ.३६)॥

विमर्श- यह अमरेन्थेशी (Fam.-Amaranthaceae) परिवार का सदस्य है। यह एक प्रकार का शाकीय पौधा है जो कि खांसी में प्रयुक्त होता है। इसके काढ़ा का श्वास नली के संक्रमण एवं गुर्दो सम्बन्धी जलशोथ में उपयोग किया जाता है।

२२४. अपामार्ग

परिचय

गण—शिरोविरेचन, कृमिघ्न, वमनोपग (च०); अर्कादि (सु०)।

कुल—अपामार्ग-कुल (अमरैण्टेसी-Amaranthaceae)।

नाम—लै०-एकाइरैन्थस ऐस्परा (Achyranthes aspera Linn.); सं०-अपामार्ग (दोषों का मार्जक या संशोधक), शिखरी (पुष्प-फल शिखरतुल्य मंजरी में होने से); अधःशल्य (अधोमुख कंटक); मयूरक, खरमंजरी (पुष्पमंजरी खर होने से), प्रत्यक्पुष्पा (पुष्प अधोमुख होने से), आघाट, हि०-चिड़चिड़ी, चिरचिटा, चिचड़ा लटजीरा; बं०-अपाङ्; पं०-पुठकंडा; म०-आघाड़ा; गु०-अघेड़ों; ता०-नाजुरिवि; ते०-अपामार्ग; उत्तरेन; कन्न०-उत्तरेन; मल०-कटलती, अ०-अल्कुम; फा०-खारेवाजगून; अं०-प्रिकली चाफ फ्लावर (Prickly chaff flower)।

स्वरूप—इसका **क्षुप** १-३ फुट ऊँचा, **काण्ड** सरल या शाखायुक्त होता है। **शाखायें** पर्वों पर मोटी होती हैं। **पत्र**-अंडाकार या अभिलट्वाकार, लंबाग्र, १-५ इञ्च लंबे, रोमश होते हैं। **पुष्पमञ्जरी**-लगभग १ फुट लंबी, खर और दृढ़ तथा अग्रभाग पर स्थूल और झुकी हुई होती है जिसमें अधोमुख, ¼-½ इञ्च लंबे पुष्प

लगते हैं। वृन्तपत्रक–लट्वाकार, गुलाबी रंग के, काँटेदार; प्रायः काँटे से आधे या बराबर लंबे होते हैं। फलीय परिपुष्प–१८–२ इञ्च लंबा, हरितवर्ण गुलाबी आभा लिए, वृन्तपत्रकों के साथ पृथक् हो जाता है, केवल मुड़ा हुआ कोणपुष्पक रह जाता है। परिपुष्प के दल भालाकार, बाहरी त्रिशेष तीक्ष्णाग्र होते हैं। पुंकेशर–पाँच होते हैं। कण्टकीय वृन्तपत्रकों तथा तीक्ष्णाग्र परिपुष्प के कारण फल कपड़ों में चिपक जाते हैं और हाथ में भी गड़ जाते हैं। पके फलों के भीतर से चावल के समान दाने निकलते हैं जिन्हें 'अपामार्गतण्डुल' कहा गया है। शीतकाल में पुष्प और फल लगते हैं तथा ग्रीष्म में फल पक कर गिर जाते हैं।

जाति—निघण्टुओं में यह दो प्रकार का कहा गया है :—(१) श्वेत और (२) रक्त। रक्त अपामार्ग का काण्ड और शाखायें रक्ताभ होती है। पत्रों पर भी लाल दाग होते हैं। यह उपर्युक्त प्रजाति का ही एक रूप प्रतीत होता है।

हिमालय में ४–६ हजार फीट की ऊँचाई पर A. bidentata Blume प्रजाति होती है जिसके वृन्तपत्रक के मूल में दो कर्णिकायें होती है।

उत्पत्तिस्थान—यह समस्त भारत के शुष्क प्रदेशों में स्वयं होता है।

रासायनिक संघटन—इसकी राख में विशेषतः पोटाश होता है।

गुण

गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण
रस—कटु, तिक्त
विपाक—कटु
वीर्य—उष्ण

कर्म

दोषकर्म—यह कफवातशामक तथा कफपित्तसंशोधन है।

संस्थानिक कर्म–बाह्य—यह शोथहर, वेदनास्थापन, लेखन, विषघ्न; त्वग्दोषहर और व्रणशोधन है। शिरोविरेचन भी है।

आभ्यन्तर–पाचनसंस्थान—रोचन, दीपन, पाचन, पित्तसारक और कृमिघ्न है। बीज दुर्जर और विष्टम्भी है।

रक्तवहसंस्थान—हृद्य, रक्तशोधक, रक्तवर्धक और शोथहर है।

श्वसनसंस्थान—कफनिःसारक है।

मूत्रवहसंस्थान—मूत्रल, अश्मरीनाशन और मूत्राम्लतानाशक है।

त्वचा—स्वेदजनन, कुष्ठघ्न और कण्डूघ्न है।

सात्मीकरण—यह कटुपौष्टिक और विषघ्न है।

उत्सर्ग—इसका क्षार त्वचा, फुफ्फुस, आमाशय, यकृत् और पित्त के द्वारा बाहर निकलता है।

प्रयोग

दोषप्रयोग—यह कफवातरोगों में प्रयुक्त होता है। कफरोगों में संशोधनार्थ इसके तण्डुल का नस्य देते हैं और पैत्तिक रोगों में इसका स्वरस पिलाते हैं।

संस्थानिक प्रयोग-बाह्य—शोथवेदनायुक्त विकारों में इसका लेप करते हैं। नेत्ररोगों, विशेषतः अव्रण शुक्ल (फूली) में इसकी जड़ मधु में घिस कर अञ्जन लगाते हैं। व्रणों में इसका स्वरस लगाते हैं। वृश्चिक और सर्प के दंशस्थान पर इसका लेप करते हैं। कर्णशूल में इसके क्षार से सिद्ध तैल डालते हैं। नस्य के लिए इसके तण्डुल के चूर्ण का प्रयोग होता है। पामा आदि चर्मरोगों में इसकी जड़ पीस कर लगाते हैं।

आभ्यन्तर-पाचनसंस्थान—अरुचि, छर्दि, अग्निमांद्य, शूल, उदररोग, आध्मान, अर्श, पित्ताश्मरी, कृमि रोगों में यह प्रयुक्त होता है। बीजों की खीर बना कर भस्मक रोग में देते हैं।

रक्तवहसंस्थान—हृद्रोग, रक्तविकार, पाण्डु, गण्डमाला, आमवात और शोथरोग में उपयोगी है। रक्ताम्लता में भी प्रयुक्त होता है।

श्वसनसंस्थान—कास और श्वास में इसका क्षार कफ निकालने के लिए प्रयुक्त होता है।

मूत्रवहसंस्थान—बस्तिशोथ, वृक्कशोथ, अश्मरी आदि रोगों में लाभकर है।

त्वचा—कुष्ठ, चर्मरोग, वर्णविकार आदि में प्रयोग करते हैं।

सात्मीकरण—सामान्य दौर्बल्य में इसका सेवन कराते हैं। सर्पविष में इसका मूल कालीमिर्च के साथ पीस कर पिलाते हैं।

प्रयोज्य अंग—मूल, तण्डुल, पत्र, पञ्चांग।

मात्रा—स्वरस—१०–२० मि.लि.; क्षार—½–२ ग्रा०

विशिष्ट योग—अपामार्गक्षारतैल

× × ×

'अपामार्गः सरस्तीक्ष्णो दीपनस्तिक्तकः कटुः। पाचनो रोचनश्छर्दिकफमेदोनिलापहः॥ निहन्ति हृद्रुजाध्मानकण्डूशूलोदरापचीः।' (भा. प्र.)

'अपामार्गस्तु तिक्तोष्णः कटुकः कफनाशनः। अर्शःकण्डूदरामघ्नो रक्तहृद्ग्राहिवान्तिकृत्।' (ध. नि.)

'प्रत्यक्पुष्पा शिरोविरेचनानाम्।' (च. सू. २५)

F. I., IV, 730.

B. B. O., ii, 805.